International Journal of Research in Hindi
www.hindijournal.in
ISSN: 2582-3493
Received: 02-10-2021, Accepted: 16-10-2021, Published: 30-10-2021
Volume 3, Issue 4, 2021, Page No. 16-17

हिंदी साहित्य और पर्यावरणीय विमर्श दृष्टि

अर्चना शर्मा
एसोसिएट प्रोफेसर, हिंदी विभाग, रामजस कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, भारत

सारांश
प्रस्तुत शोध–आलेख का ध्येय हिंदी साहित्य की सुदीर्घ परंपरा में पर्यावरणीय चिंतन एवं विमर्श को रेखांकित करना रहा है । शोध–आलेख में हिंदी साहित्य के सन्दर्भ में आदिकालीन, मध्यकालीन एवं आधुनिककालीन साहित्य परंपरा में पर्यावरणीय चिंतन एवं विमर्श के महत्वपूर्ण बिन्दुओं को सोदाहरण प्रस्तुत किया गया है । शोध आलेख के माध्यम से वर्तमान समय के अत्यंत महत्वपूर्ण विमर्श एवं वैश्विक आवश्यकता को चिंतन एवं विमर्श की दृष्टि से लिपिबद्ध किया गया है । प्रस्तुत शोध–आलेख की प्रासंगिकता का आधार भी पर्यावरण–संरक्षण संबधी उपायों की परम्परा–साहित्य और वर्तमान पटल पर खोज से है ।

मूल शब्दः पर्यावरण, विमर्श, साहित्य, परंपरा, चिंतन, आदिकाल, मध्यकाल, आधुनिक काल, चित्तवृत्ति

प्रस्तावना

साहित्य तथा पर्यावरण का संबंध आदिम एवं घनिष्ठता का परिचायक है। प्रकृति युगों–युगों से साहित्यकार की अभिव्यक्ति का माध्यम रही है। व्यक्ति की अनुभूतियों एवं आवश्यकताओं के अनुसार साहित्य की चित्तवृत्तियों में परिवर्तन स्वाभाविक है। काव्य के उपरांत गद्य एवं अन्य प्रचलित गद्य विधाएँ – नाटक, निबंध, कहानी, उपन्यास सहित आत्मकथा एवं जीवनियों के प्रचलन में वृद्धि हुई तथा इनमें पर्यावरणीय विमर्श मुख्य रूप से उभरकर सम्मुख प्रकट हुआ। वर्तमान हिंदी कवियों और लेखकों ने पर्यावरण विमर्श के प्रति उन्मुक्त रूप से सजगता प्रकट की है। वर्तमान साहित्यकार पर्यावरणीय क्षरण को चुनौती के रूप में लेखन के माध्यम से पृष्ठों पर उतार रहा है। वास्तव में यह लेखकीय सजगता का उदाहरण भी है। सेनापति, सुमित्रानंदन पंत, जयशंकर प्रसाद, सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' इत्यादि की लेखनी का हिस्सा पर्यावरणीय तत्त्व अवश्य रहे हैं।

यदि गौर करें तो पर्यावरण का अर्थ है – पृथ्वी पर विद्यमान जल, वायु, ध्वनि, रेडियोधर्मिता एवं रसायनिक पर्यावरण। जब ये समृद्ध होते हैं तो हमें जीवन प्रदान करते हैं। 'जब ये पर्यावरण के आवश्यक तत्त्व दूषित हो जाते हैं तो हमारी चिंता का विषय बन जाते हैं। यही पर्यावरणीय चिंता प्रदूषण का प्रयोग बन गया है। चारों ओर पर्यावरण में विकृति ही प्रदूषण को जन्म देती है।

मेरा व्यक्तिगत मत है कि पर्यावरण के क्षरण का मूल कारण मानवीय भोगवादी प्रवृत्ति रही है। अतः कवि–मन कविताओं में सदैव प्रकृति के क्षरण से उत्पन्न प्रदूषण पर अपनी वाणी को मुखर करने से पीछे नहीं हटता –

'हरियाली चारों ओर थी, पहले की सृष्टि में,
सब कुछ हरा–हरा दिखा करता था, दृष्टि में।
जल, मृद, वन विनाश और ध्वनि का प्रदूषण,
अंतर बहुत पड़ा है, आज दृष्टि में।'

इस प्रकार पर्यावरणीय विमर्श के तहत संरक्षण हेतु 'जन चेतना' अत्यंत आवश्यक है। यदि 'जन–चेतना' तथा 'जन–सहभागिता' नहीं होगी तो हमारे समक्ष पर्यावरणीय सहित सांस्कृतिक प्रदूषण की त्रासदी उपस्थित होगी –

'प्रदूषण दिनों दिन बढ़ रहा है,
ध्वनि, हवा, पानी, मृदा, अन्न,
और बिगड़ रहा मन।'

इसमें किंचित संदेह नहीं कि यदि पर्यावरणीय चिंतन पर अनिवार्य रूप से ध्यान केंद्रित न किया गया तो हमें भारी मूल्य अदा करना होगा –

"पर्यावरण के प्रति विश्व को सचेत हो जाना है।
अगर जीव जगत को महा विनाश से बचाना है।"

आदिकालीन हिंदी साहित्य में विद्यापति कृत 'पदावली' प्रकृति चित्रण का जीवंत दस्तावेज प्रस्तुत करती है –

'मौली रसाल मुकुल भेल ताब,
समुखहिं कोकिल पंचम गाय।'

भक्तिकाल के प्रादुर्भाव सहित कबीर, सूर, तुलसी, जायसी के कृतित्व में 'प्रकृति' अनेक उपादानों से विभूषित हो प्रस्तुत हुई। गोस्वामी जी ने 'रामचरितमानस' में सीता और लक्ष्मण को वृक्षारोपण करते हुए चित्रित किया है –

'तुलसी तरुवर विविध सुहाए,
कहुं कहुं सिया कहुं लखन लगाएं।'

रीतिकालीन गलियारों से होकर रीतिसिद्ध कवि बिहारी के काव्य में प्राकृतिक सौंदर्य उन्मुक्त रूप से खिलखिलाता नजर आता है –

'चुक्त स्वेद मकरंद मन,
तरु तरु तरु विरमाय।
आवत दक्षिण देश ते,
थक्यों बटोही बाय।'– बिहारी

आधुनिक काल में प्रकृति के बहुआयामी चित्र साहित्य में चित्रित हुए। मैथिलीशरण गुप्त ने रात्रिकालीन बेला की छटा का वर्णन प्रस्तुत किया है –

'चारू चंद्र की चंचल किरणें,

खेल रही हैं जल थल में।
स्वच्छ चाँदनी बिछी हुई है,
अवनि और अंबर तल में।'

छायावादी काव्य पूर्णतः प्रकृति को साथ लेकर अग्रसरित हुआ। प्रकृति का सूक्ष्म व प्रभावी रूप काव्य का महत्त्वपूर्ण अंग बनकर उभरा। जयशंकर प्रसाद, निराला, सुमित्रानंद पंत, महादेवी वर्मा इत्यादि के काव्य में प्रकृति मानो पूर्ण जीवंतता के साथ प्रकट हुई। पंत की काव्य पंक्तियाँ प्रस्तुत हैं –

'छोड़ द्रुमों की मृदु छाया,
तोड़ प्रकृति से भी माया,
बाले! तेरे बाल–जाल में कैसे उलझा दूँ लोचन?'

जयशंकर प्रसाद कृत 'कामायनी' इस दृष्टि से अत्यंत महत्त्वपूर्ण सिद्ध होती है–

'हिमगिरि के उत्तुंग शिखर पर,
बैठ शिला की शीतल छाँह,
एक पुरुष, भीगे नयनों से
देख रहा था प्रलय प्रवाह।'

निष्कर्ष

अस्तु य 21वीं सदी में मनुष्य ने धरा से अंतरिक्ष तक अपनी पहुँच पुख्ता की है। किंतु स्मरणीय तथ्य है कि इस आपाधापी में वह यह भी सुनिश्चित करे कि श्वास हेतु आज भी 'उपकरण' नहीं अपितु 'ऑक्सीजन' की ही आवश्यकता है। मेरा मत है कि इसका आधार सदैव पर्यावरणीय पृष्ठभूमि ही रहेगी।

संदर्भ

1. वेदों में पर्यावरणीय चिंता:: डॉ० प्रणव, पृष्ठ–31
2. पर्यावरण विमर्श:: डॉ० शरद मिश्र, पृष्ठ–472
3. हमारा पर्यावरण:: डॉ० विद्रोही दशरथ लाल निषाद, पृष्ठ–485
4. पर्यावरण विमर्श:: डॉ० ब्रिजेश सिंह, पृष्ठ–564